अध्याय 2

तलाश

भारत के अतीत की झाँकी

बीते हुए सालों में मेरे मन में भारत ही भारत रहा है। इस बीच मैं बराबर उसे समझने और उसके प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करने की कोशिश करता रहा हूँ। मैंने बचपन की ओर लौटकर याद करने की कोशिश की कि मैं तब कैसा महसूस करता था, मेरे मन में इस अवधारणा ने कैसा धुँधला रूप ले लिया था और मेरे ताज़ा अनुभव ने उसे कैसे सँवारा था।

आखिर यह भारत है क्या? अतीत में यह किस विशेषता का प्रतिनिधित्व करता था? उसने अपनी प्राचीन शक्ति को कैसे खो दिया? क्या उसने इस शक्ति को पूरी तरह खो दिया है? विशाल जनसंख्या का बसेरा होने के अलावा क्या आज उसके पास ऐसा कुछ बचा है जिसे जानदार कहा जा सके? आधुनिक विश्व से उसका तालमेल किस रूप में बैठता है?

भारत मेरे खून में रचा-बसा था। इसके बावजूद मैंने उसे एक बाहरी आलोचक की नज़र से देखना शुरू किया। ऐसा आलोचक जो वर्तमान के साथ-साथ अतीत के बहुत से अवशेषों को, जिन्हें उसने देखा था—नापसंद करता था। एक हद तक मैं उस तक पश्चिम के रास्ते से होकर पहुँचा था। मैंने उसे उसी भाव से देखा जैसे संभवत: किसी पश्चिमी मित्र ने देखा होता। मेरे भीतर शंकाएँ सिर उठा रही थीं। क्या मैंने भारत को जान लिया था? मैं, जो उसके अतीत की विरासत के बड़े हिस्से को खारिज करने का साहस कर रहा था। लेकिन अगर भारत के पास वह कुछ नहीं होता जो बहुत जीवंत और टिकाऊ रहा है, वह बहुत कुछ जो सार्थक है, तो भारत का वजूद उस रूप में नहीं होता जैसा आज है और वह हज़ारों वर्ष तक अपने 'सभ्य' अस्तित्व की पहचान इस रूप में कदापि बनाए नहीं रख सकता था। वह 'विशेष' तत्व आखिर क्या था?

मैं भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित सिंधु घाटी में मोहनजोदड़ो के एक टीले पर खड़ा था। मेरे चारों तरफ़ उस प्राचीन नगर के घर और गलियाँ बिखरी थीं जिसका समय पाँच हज़ार वर्ष पहले बताया जाता है। साथ ही यह भी कहा जाता है कि वहाँ एक प्राचीन और पूर्णत: विकसित सभ्यता थी। इनके स्थायी रूप से टिके रहने का कारण है इसका ठेठ भारतीयपन और यही आधुनिक भारतीय सभ्यता का आधार है। यह विचार आश्चर्यचकित कर देता है कि कोई संस्कृति या सभ्यता इस प्रकार पाँच-छह हज़ार वर्ष या उससे भी कुछ अधिक समय तक निरंतर बनी रहे, वह भी बराबर परिवर्तनशील और विकासमान रहकर। फ़ारस, मिस्र, ग्रीस, चीन, अरब, मध्य-एशिया और भू-मध्य सागर के लोगों से उसका बराबर निकट संपर्क रहा। यद्यपि भारत ने उन्हें प्रभावित किया और स्वयं भी उनसे प्रभावित हुआ, फिर भी उसका सांस्कृतिक आधार इतना मज़बूत था कि वह हिला नहीं। इस मज़बूती का रहस्य क्या है?

मोहनजोदड़ो की एक नाली और उसका विशाल प्रवेशद्वार

मैंने भारत का इतिहास और उसके विशाल प्राचीन साहित्य के कुछ अंशों को पढ़ा। मुझ पर विचारों की तेजस्विता, भाषा की स्पष्टता और उसके पीछे सक्रिय मस्तिष्क की समृद्धि ने गहरा प्रभाव डाला। मैंने उन पराक्रमी यात्रियों के साथ भारत की यात्रा की जो सुदूर अतीत में यहाँ चीन तथा पश्चिमी और मध्य-एशिया से आए थे और अपनी यात्राओं की दास्तान छोड़ गए थे। मैं पूर्वी एशिया, अंगकोर, बोरोबुदुर और बहुत-सी जगहों में भारत की उपलब्धियों के बारे में सोचने लगा। मैं उस हिमालय पर घूमता रहा जिसका पुराने मिथकों और

दंतकथाओं के साथ निकट संबंध है और जिसने हमारे विचारों और साहित्य को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। पहाड़ों के प्रति मेरे प्रेम ने और कश्मीर के साथ मेरे खून के रिश्ते ने मुझे उनकी ओर विशेष रूप से आकर्षित किया। इस महान पर्वत से निकलकर भारत के मैदानों में बहने वाली भारत की विशाल नदियों ने मुझे आकर्षित किया और इतिहास के अनगिनत पहलुओं की याद ताज़ा की। इंडस या सिंधु, जिसके आधार पर हमारे इस देश का नाम पड़ा 'इंडिया' और 'हिंदुस्तान', और जिसे पार करके हज़ारों वर्षों से यहाँ जातियाँ और कबीले, काफ़िले और फ़ौजें आती रही हैं। ब्रह्मपुत्र...इतिहास की मुख्यधारा से लगभग कटी हुई, पर पुरानी कहानियों में आज भी जीवित, उत्तरपूर्वी पहाड़ियों के हृदय में पड़ी गहरी दरारों के बीच से बरबस मार्ग बनाती हुई भारत में प्रवेश करती है और फिर पहाड़ों और जंगलों से भरे मैदान के बीच शांत रमणीय धारा के रूप में बहने लगती है। यमुना, जिसके चारों ओर नृत्य, उत्सव और नाटक से संबद्ध न जाने कितनी पौराणिक कथाएँ एकत्र हैं। इन सबसे बढ़कर है, भारत की नदी गंगा, जिसने इतिहास के आरंभ से ही भारत के हृदय पर राज किया है और लाखों की तादाद में लोगों को अपने तटों की ओर खींचा है। प्राचीन काल से आधुनिक युग तक, गंगा की गाथा भारत की सभ्यता और संस्कृति की कहानी है।

मैंने पुराने स्मारकों और भग्नावशेषों को और पुरानी मूर्तियों और भित्ति चित्रों को देखा–अजंता, एलोरा, ऐलिफ़ेंटा की गुफ़ाओं और अन्य स्थानों को देखा। मैंने आगरा और दिल्ली में कुछ समय बाद बनी खूबसूरत इमारतों को भी देखा, जहाँ का प्रत्येक पत्थर भारत के अतीत की कहानी कह रहा था।

मैं अपने शहर इलाहाबाद में या फिर हरिद्वार में महान स्नान-पर्व कुंभ के मेले में जाता हूँ और देखता हूँ कि वहाँ अब भी सैकड़ों और हज़ारों की तादाद में लोग आते हैं–वैसे ही जैसे हज़ारों वर्ष से उनके पुरखे गंगा-स्नान करने के लिए भारत के सभी कोनों से आते रहे हैं। मुझे तेरह सौ साल पहले चीनी यात्रियों और कुछ दूसरे लोगों द्वारा लिखे इन पर्वों के वर्णनों की याद आ जाती है, गोकि उस समय भी ये मेले पुराने पड़ चुके थे और अनजाने प्राचीन काल में गुम हो गए थे। मुझे हैरत होती थी, कि वह कौन-सी प्रबल

आस्था थी जो हमारे लोगों को अनगिनत पीढ़ियों से भारत की इस प्रसिद्ध नदी की ओर खींचती रही है।

मेरे अध्ययन की पृष्ठभूमि के साथ इन यात्राओं और दौरों ने मिलकर मुझे अतीत में देखने की अंतर्दृष्टि दी। मेरे मन में भारत की जो तसवीर थी उसमें धीरे-धीरे सच्चाई का बोध घर करने लगा। मेरे पूर्वजों की भूमि में ऐसे जीते जागते लोग आबाद हो गए जो हँसते-रोते थे, प्यार करते थे और पीड़ा भोगते थे। इन्हीं में ऐसे लोग भी थे जिन्हें ज़िंदगी की जानकारी और समझ थी। इस अतीत के सैकड़ों सजीव चित्र मेरे मन में भरे थे। जब भी किसी जगह जाता था, उस विशेष स्थान से संबद्ध चित्र तत्काल मेरे सामने आ खड़ा होता था। बनारस के पास सारनाथ में मैंने बुद्ध को उनका पहला उपदेश देते हुए लगभग साफ़ देखा। ढाई हज़ार वर्ष का फ़ासला तय करके उनके कुछ अभिलिखित शब्द जैसे दूर से आती प्रतिध्वनि की तरह मुझे सुनाई पड़े। अशोक के पाषाण स्तंभ जैसे अपने शिलालेखों के माध्यम से मुझे एक ऐसे आदमी के बारे में बताते थे, जो खुद एक सम्राट होकर भी किसी अन्य राजा और सम्राट से महान था। फ़तेहपुर सीकरी में, अपने साम्राज्य को भुलाकर बैठा अकबर विभिन्न मतों के विद्वानों से संवाद और वाद-विवाद कर रहा था। वह जिज्ञासु भाव से मनुष्य की शाश्वत समस्याओं का हल तलाश कर रहा था।

इस तरह भारत के इतिहास की लंबी झाँकी अपने उतार-चढ़ावों के और विजय-पराजयों के साथ जैसे धीरे-धीरे मेरे सामने खुलती जा रही थी। मुझे इतिहास के पाँच हज़ार वर्षों से चली आ रही इस सांस्कृतिक परंपरा की निरंतरता में कुछ विलक्षणता प्रतीत होती है। यह परंपरा जो दूर-दूर तक जनता में फैली थी और जिसने उस पर गहरा प्रभाव डाला था।

भारत की शक्ति और सीमा

भारत की शक्ति के स्रोतों और उसके पतन और नाश के कारणों की खोज लंबी और उलझी हुई है। पर उसके पतन के हाल के कारण पर्याप्त स्पष्ट हैं। भारत तकनीक की दौड़ में पिछड़ गया और यूरोप जो तमाम बातों में एक ज़माने से पिछड़ा हुआ था, तकनीकी प्रगति के मामले में आगे निकल गया।

इस तकनीकी विकास के पीछे विज्ञान की चेतना थी तथा हौसलामंद जीवनी शक्ति और मानसिकता थी। नयी तकनीकों ने पश्चिमी यूरोप के देशों को सैनिक बल दिया और उनके लिए अपना विस्तार करके पूरब पर अधिकार करना आसान हो गया। यह केवल भारत की ही नहीं, लगभग सारे एशिया की कहानी है।

ऐसा क्यों हुआ, इस गुत्थी को सुलझाना ज़्यादा मुश्किल है क्योंकि पुराने समय में तो भारत में मानसिक सजगता और तकनीकी कौशल की कमी थी नहीं, किंतु बाद की सदियों में उत्तरोत्तर गिरावट का आभास होने लगता है। जीवन की लालसा और उद्यम में कमी आ जाती है। क्षीण होती रचनात्मक प्रवृत्ति की जगह अनुकरण की प्रवृत्ति ले लेती है। जहाँ कामयाबी के साथ विद्रोही विचार-पद्धति ने प्रकृति और ब्रह्मांड के रहस्यों को भेदने का प्रयास किया था, वहाँ शब्दाडंबर से लैस भाष्यकार उसकी जगह लेता दिखाई देने लगता है। भव्य कला और मूर्ति निर्माण का स्थान जटिल पच्चीकारी वाली सावधानी से की गई नक्काशी लेने लगी। प्रभावी किंतु सरल, सजीव और समृद्ध भाषा की जगह, अत्यंत अलंकृत और जटिल साहित्य शैली ने ले ली। साहसिक कार्यों की लालसा और छलकती हुई ज़िंदगी, जिसके कारण सुदूर देशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार संभव हो सका था, क्षीण हो चली और उसके स्थान पर महासागरों को पार करने पर रोक लगाने वाली संकीर्ण रूढ़िवादिता ने जन्म ले लिया। जाँच-पड़ताल की विवेकपूर्ण चेतना लुप्त होती गई और अतीत की अंधी मूर्तिपूजा ने उसकी जगह ले ली। अतीत के विकट भार ने उसे कुचल कर रख दिया और वह एक तरह की मूर्च्छा से ग्रस्त हो गई। मानसिक जड़ता और शारीरिक थकावट की इस हालत में भारत का ह्रास होने लगा। वह गतिहीन और जड़ हो गया जबकि विश्व के दूसरे हिस्से प्रगति के पथ पर बढ़ते गए।

किंतु यह स्थिति का पूरा और पूर्णतः सही सर्वेक्षण नहीं है। यदि केवल जड़ता और गतिहीनता का एकरस और लंबा दौर रहा होता, तो उसका नाता अतीत से पूरी तरह टूट जाता। एक युग का अंत और उसके ध्वंसावशेषों पर किसी नयी चीज़ का निर्माण होता। इस तरह का क्रमभंग नहीं हुआ और भारत में भी निरंतरता बनी रही। इसके अलावा, समय-समय पर पुनर्जागरण

के दौर आते रहे। नए को समझने और उसे अनुकूल बनाकर कम-से-कम पुराने के उस अंश के साथ, जिसको रक्षा करने लायक समझा गया, उसका सामंजस्य करने के प्रयास साफ़ दिखाई पड़ते हैं। अक्सर पुराने का केवल बाहरी ढाँचा प्रतीक के रूप में बचा रहा और उसकी अंतर्वस्तु बदल गई। ऐसी लालसा, जो लोगों को उस लक्ष्य की ओर खींचती है जो पूरी तरह सिद्ध नहीं किया जा सका हो, और साथ ही प्राचीन और नवीन के बीच सामंजस्य स्थापित करने की इच्छा बराबर बनी रहती है – इसी लालसा ने उन्हें गति दी और उन्हें पुराने को बनाए रखने के साथ-साथ नए विचारों को आत्मसात करने की सामर्थ्य दी।

भारत की तलाश

पुस्तकों, प्राचीन स्मारकों और विगत सांस्कृतिक उपलब्धियों ने मुझमें एक हद तक भारत की समझ तो पैदा की लेकिन मुझे उससे संतोष नहीं हुआ, न ही मुझे वह उत्तर मिला जिसकी मैं तलाश कर रहा था। वर्तमान मेरे लिए और मुझ जैसे बहुत से और लोगों के लिए मध्ययुगीनता, भयंकर गरीबी एवं दुर्गति और मध्य वर्ग की कुछ-कुछ सतही आधुनिकता का विचित्र मिश्रण है। मैं अपने वर्ग और अपनी किस्म के लोगों का प्रशंसक नहीं था, फिर भी भारतीय संघर्ष में नेतृत्व के लिए मैं निश्चित रूप से मध्य वर्ग की ओर देखता था। यह मध्य वर्ग स्वयं को बंदी और सीमाओं में जकड़ा हुआ महसूस करता था और खुद तरक्की और विकास करना चाहता था। अंग्रेज़ी शासन के ढाँचे के भीतर ऐसा न कर पाने के कारण उसके भीतर विद्रोह की चेतना पनपी। लेकिन यह चेतना उस ढाँचे के खिलाफ़ नहीं जाती थी जिसने हमें रौंद दिया था। ये उस ढाँचे को बनाए रखना चाहते थे और अंग्रेज़ों को हटाकर उसका संचालन करना चाहते थे। ये मध्य वर्ग के लोग इस हद तक इस ढाँचे की पैदाइश थे कि उसे चुनौती देना या उसे उखाड़ फेंकने का प्रयास करना इनके बस की बात नहीं थी।

नयी ताकतों ने सिर उठाया और वे हमें ग्रामीण जनता की ओर ले गईं। पहली बार एक नया और दूसरे ढंग का भारत उन युवा बुद्धिजीवियों के सामने आया जो इसके अस्तित्व को लगभग भूल ही गए थे या उसे बहुत

कम अहमियत देते थे। यह दृश्य बेचैन कर देने वाला था इसलिए कि उसने हमारे कुछ मूल्यों और निष्कर्षों में संदेह उत्पन्न कर दिया था। तब हमने भारत के वास्तविक रूप की तलाश शुरू की और इससे हमारे भीतर इसकी समझ और द्वंद्व दोनों ही पैदा हुए। कुछ लोग इस ग्रामीण समुदाय से पहले से परिचित थे, इसलिए उन्हें कोई नया उत्तेजक अनुभव नहीं हुआ। पर मेरे लिए यह सही अर्थों में नयी तलाश के लिए यात्रा थी। गोया कि मुझे बराबर अपने लोगों की असफलताओं और कमज़ोरियों का दर्द भरा अहसास रहता था, पर भारत की ग्रामीण जनता में कुछ ऐसा था जिसे परिभाषित करना कठिन है पर उसने मुझे बराबर आकर्षित किया। उनमें कुछ ऐसी बात थी जो मध्य वर्ग में अनुपस्थित थी।

मैं आम जनता की अवधारणा को काल्पनिक नहीं बनाना चाहता। मेरे लिए भारत के लोगों का अपनी सारी विविधता के साथ वास्तविक अस्तित्व है। उनकी विशाल संख्या के बावजूद मैं उनके बारे में अनिश्चित समुदायों के नहीं, व्यक्तियों के रूप में सोचने की कोशिश करता हूँ। चूँकि मैंने उनसे बहुत अपेक्षाएँ नहीं रखी, शायद इसीलिए मुझे निराशा भी नहीं हुई। मैंने जितनी उम्मीद की थी उससे कहीं अधिक पाया। मुझे सूझा कि इसका कारण और इसके साथ ही उनमें जो एक प्रकार की दृढ़ता और अंतःशक्ति है उसका कारण भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा है जिसे उन्होंने कुछ अंशों में अब भी बचाए रखा है। पिछले दो सौ वर्षों में उन्होंने जो अत्याचार झेला है बहुत कुछ तो उसी के कारण समाप्त हो गया। फिर भी कुछ तो ऐसा बच रहा है जो सार्थक है और उसके साथ बहुत कुछ ऐसा है जो निरर्थक और अनिष्टकर है।

भारत माता

अक्सर जब मैं एक के बाद एक सभा में जाता तो श्रोताओं से मैं अपने इस देश की चर्चा करता–हिंदुस्तान की और साथ ही भारत की–जो जाति के संस्थापक 'भरत' के नाम पर आधारित इसका प्राचीन संस्कृत नाम है। मैंने शहरों में ऐसा कम किया क्योंकि वहाँ के श्रोता अपेक्षाकृत आधुनिक थे और वे अधिक दमदार भाषण की अपेक्षा करते थे। पर सीमित नज़रिए वाले

किसानों को मैंने इस महान देश की बाबत बताया जिसकी मुक्ति के लिए हम संघर्ष कर रहे हैं, कि कैसे इसका हर हिस्सा दूसरे से भिन्न होते हुए भी भारत है। मैंने उन्हें उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम तक किसानों की सामान्य समस्याओं की जानकारी दी और उस स्वराज की भी जो कुछ विशेष लोगों के लिए नहीं, सब के लिए, भारत के हर हिस्से के लिए एक-सा होगा। मैंने उन्हें सुदूर उत्तर-पश्चिम में खैबर पास से कन्याकुमारी या केप कोमरिन तक अपनी यात्रा के बारे में बताया। मैंने बताया कि कैसे हर जगह मुझसे किसानों ने एक जैसे सवाल पूछे, क्योंकि उनकी समस्याएँ समान थीं–गरीबी, कर्ज़, निहित स्वार्थ, ज़मींदार, महाजन, भारी लगान और कर, पुलिस के अत्याचार और ये सब उस ढाँचे में लिपटे हुए थे जिसे हमारे ऊपर विदेशी हुकूमत ने आरोपित किया था। साथ ही यह भी कि राहत भी सबके लिए आनी चाहिए। मैंने इस बात की कोशिश की कि वे भारत को अखंड मानकर उसके बारे में सोचें। साथ ही थोड़ा-बहुत उस विराट विश्व के बारे में भी सोचें, जिसके हम एक हिस्से हैं।

यह काम बहुत आसान नहीं था पर उतना मुश्किल भी नहीं था जैसा मैंने सोचा था। हमारे प्राचीन महाकाव्यों, पुरागाथाओं और दंतकथाओं की उन्हें पूरी जानकारी थी। इस साहित्य ने अपने देश की अवधारणा से उन्हें परिचित करा दिया था। इन लोगों में से हमेशा कुछ ऐसे भी होते ही थे जिन्होंने भारत के चारों कोनों में स्थित धार्मिक स्थलों की यात्रा की थी।

कभी-कभी जैसे ही मैं किसी सभा में पहुँचता था, मेरे स्वागत में अनेक कंठों का स्वर गूँज उठता था– "भारत माता की जय।" मैं उनसे अचानक प्रश्न कर देता कि इस पुकार से उनका क्या आशय है? मेरा प्रश्न उन्हें मनोरंजक लगता और चकित करता। उनकी ठीक-ठीक समझ में नहीं आता कि वे मुझे क्या जवाब दें और तब वे एक दूसरे की ओर, और फिर मेरी ओर ताकने लगते। मैं बार-बार सवाल करता जाता। आखिर एक हट्टा-कट्टा जाट, जिसका न जाने कितनी पीढ़ियों से मिट्टी से अटूट नाता है, जवाब में कहता कि यह भारत माता हमारी धरती है, भारत की प्यारी मिट्टी। मैं फिर सवाल करता–"कौन सी मिट्टी? उनके अपने गाँव के टुकड़े की या ज़िले और राज्य

के तमाम टुकड़ों की या फिर पूरे भारत की मिट्टी?" प्रश्नोत्तर का यह सिलसिला तब तक चलता रहता जब तक वे प्रयत्न करते रहते और आखिर में कहते कि भारत वह सब कुछ तो है ही जो उन्होंने सोच रखा है, उसके अलावा भी बहुत कुछ है। भारत के पहाड़ और नदियाँ, जंगल और फैले हुए खेत जो हमारे लिए खाना मुहैया करते हैं, सब हमें प्रिय हैं। लेकिन जिस चीज़ का सबसे अधिक महत्त्व है वह है भारत की जनता। उनके और मेरे जैसे तमाम लोग। वे सब लोग जो इस विशाल धरती पर चारों ओर फैले हैं। भारत माता मूल रूप से यही लाखों लोग हैं और उसकी जय का अर्थ है इसी जनता जनार्दन की जय। मैंने उनसे कहा कि तुम भारत माता के हिस्से हो, एक तरह से तुम खुद ही भारत माता हो। जैसे-जैसे यह विचार धीरे-धीरे उनके दिमाग में बैठता जाता, उनकी आँखें चमकने लगतीं मानो उन्होंने कोई महान खोज कर ली हो।

भारत की विविधता और एकता

भारत की विविधता अद्भुत है, प्रकट है, वह सतह पर दिखाई पड़ती है और कोई भी उसे देख सकता है। इसका ताल्लुक शारीरिक रूप से भी है और मानसिक आदतों और विशेषताओं से भी। बाहर से देखने पर उत्तर-पश्चिमी इलाके के पठान और सुदूर दक्षिण के वासी तमिल में बहुत कम समानता है। उनकी नस्लें भिन्न हैं, हालाँकि उनके भीतर कुछ समान सूत्र हो सकते हैं। वे चेहरे और शरीर-गठन में, खाने और पहनावे में और भाषा में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश में मध्य-एशिया की गमक तो है ही, वहाँ के बहुत से रीति-रिवाज, जैसे कश्मीर के भी, हिमालय के उस पार के देशों की याद दिलाते हैं। पठानों के लोक प्रचलित नृत्य रूसी कोज़ाक नृत्य शैली से मिलते हैं। इन तमाम भिन्नताओं के बावजूद पठान पर भारत की छाप वैसी ही स्पष्ट है जैसी तमिल पर। इसमें कोई अचरज नहीं, क्योंकि सीमा के ये प्रदेश, और साथ ही अफ़गानिस्तान भी, भारत के साथ हज़ारों वर्ष से जुड़े रहे हैं। ये पुराने तुर्क और दूसरी जातियाँ जो अफ़गानिस्तान और

मध्य एशिया में बसी थीं, इस्लाम के आने से पहले, बौद्ध थीं और उससे भी पहले वैदिक काल में हिंदू थीं। सीमांत क्षेत्र प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रमुख केंद्रों में से था। अब भी स्मारकों और मठों के ढेरों ध्वस्त अवशेष उसमें बिखरे हैं—विशेष रूप से तक्षशिला के महान विश्वविद्यालय के, जो दो हज़ार वर्ष पहले अपनी प्रसिद्धि की चरम-सीमा पर था। सारे भारत के साथ ही एशिया के विभिन्न भागों से विद्यार्थी यहाँ खिंचे आते थे। धर्म-परिवर्तन से अंतर ज़रूर आया, पर उन क्षेत्रों के लोगों ने जो मानसिकता विकसित कर ली थी वह पूरी तरह नहीं बदल सकी।

पठान और तमिल दो चरम उदाहरण हैं, बाकी की स्थिति कहीं इन दोनों के बीच में है। सबकी अपनी अलग-अलग विशेषताएँ हैं, पर सब पर इससे भी गहरी छाप भारतीयता की है। यह जानकारी बेहद हैरत में डालने वाली है कि बंगाली, मराठी, गुजराती, तमिल, आंध्र, उड़िया, असमी, कन्नड़, मलयाली, सिंधी, पंजाबी, पठान, कश्मीरी, राजपूत और हिंदुस्तानी भाषा-भाषी जनता से बसा हुआ विशाल मध्य भाग, कैसे सैकड़ों वर्षों से अपनी-अपनी अलग पहचान बनाए रहा। इसके बावजूद इन सबके गुण-दोष कमोबेश एक से हैं—इसकी जानकारी पुरानी परंपरा और अभिलेखों से मिलती है। साथ ही इस पूरे दौरान वे ऐसे भारतीय बने रहे हैं जिनकी राष्ट्रीय विरासत एक ही थी और उनकी नैतिक और मानसिक विशेषताएँ भी समान थीं। प्राचीन चीन की तरह प्राचीन भारत अपने आप में एक दुनिया थी, एक संस्कृति और सभ्यता थी जिसने तमाम चीज़ों को आकार दिया था। विदेशी प्रभाव आए और अक्सर उस संस्कृति को प्रभावित करके उसी में जज़्ब हो गए। जब भी विघटनकारी तत्व उभरे तत्काल उन्होंने सामंजस्य खोजने के प्रयास को बढ़ावा दिया। सभ्यता के आरंभ से ही भारतीय मानस में एकता के स्वप्न ने अपनी जगह बनाए रखी। इस एकता की कल्पना कभी किसी बाहर से आरोपित वस्तु या बाहरी तत्वों के या विश्वास के मानकीकरण के रूप में नहीं की गई। इसके अंतर्गत विश्वासों और रीति-रिवाजों के प्रति अपार सहिष्णुता का पालन किया गया और साथ ही हर तरह की विविधता को मान्यता ही नहीं प्रोत्साहन भी दिया गया।

किसी एक देशीय समूह में, चाहे वे कितने घनिष्ठ रूप में एक-दूसरे से जुड़े हों, छोटी-बड़ी भिन्नताएँ हमेशा देखी जा सकती हैं। उस समूह की मूल एकता तब प्रकट होती है जब उसकी तुलना किसी अन्य देशीय समूह से की जाती है। यह बात अलग है कि अक्सर दो निकटवर्ती समूहों की भिन्नता, सीमांत इलाकों में या तो धुँधली पड़ जाती हैं या आपस में घुल-मिल जाती हैं। प्राचीन और मध्य युग में, आधुनिक राष्ट्र के विचार ने जन्म नहीं लिया था और सामंती, धार्मिक या जातीय संबंधों का महत्त्व अधिक था। फिर भी, मेरा विचार है कि ज्ञात इतिहास में किसी भी समय एक भारतवासी, भारत के किसी भी हिस्से में अपने ही घर की-सी–अपनेपन की अनुभूति करता था, जबकि किसी भी दूसरे देश में पहुँचकर वह अजनबी और परदेशी महसूस करता था। उन देशों में जाकर जिन्होंने कुछ दूर तक उसकी संस्कृति या धर्म को अपना लिया था, उसे अजनबीपन का बोध निश्चय ही कम होता था। वे लोग जो किसी गैर-भारतीय धर्म को मानने वाले थे या भारत में आकर यहीं बस गए, कुछ ही पीढ़ियों के गुज़रने के दौरान स्पष्ट रूप से भारतीय हो गए जैसे यहूदी, पारसी और मुसलमान। जिन भारतीयों ने इन धर्मों को स्वीकार कर लिया वे भी धर्म-परिवर्तन के बावजूद भारतीय बने रहे।

आज, जब राष्ट्रीयतावाद की अवधारणा कहीं अधिक विकसित हो गई है, विदेशों में भारतीय अनिवार्य रूप से एक राष्ट्रीय समुदाय बनाकर विभिन्न कारणों से एकजुट होकर रहते हैं, भले ही उनमें भीतरी मतभेद हों। एक हिंदुस्तानी ईसाई, कहीं भी जाए, उसे हिंदुस्तानी ही माना जाता है। इस प्रकार किसी हिंदुस्तानी मुसलमान को तुर्की, अरब, ईरान या किसी भी अन्य देश में, जहाँ इस्लाम धर्म का प्रभुत्व हो, हिंदुस्तानी ही समझा जाता है।

मेरे खयाल से, हम सब के मन में अपनी मातृभूमि की अलग-अलग तसवीरें हैं और कोई दो आदमी बिलकुल एक जैसा नहीं सोच सकते। जब मैं भारत के बारे में सोचता हूँ, तो मेरे मन में बहुत-सी बातें आती हैं। मैं सोचता हूँ–दूर-दूर तक फैले मैदानों और उन पर बसे अनगिनत छोटे-छोटे गाँवों के बारे में। उन कस्बों और शहरों के बारे में जिनकी मैंने यात्रा की।

वर्षा ऋतु की उस जादुई बरसात के बारे में जो झुलसी हुई धरती में जीवन संचार करके उसे सहसा सौंदर्य और हरियाली के झिलमिलाते प्रसार में बदल देती है। विशाल नदियों और उनके बहते जल के बारे में। ठंड की चादर से लिपटे खैबर पास के बारे में। भारत के दक्षिणी सिरे के बारे में। लोगों के बारे में—व्यक्ति और समूह दोनों रूपों में और सबसे ज़्यादा बर्फ़ की टोपी पहने हिमालय के या वसंत ऋतु में कश्मीर की किसी पहाड़ी घाटी के बारे में जो नवजात फूलों से लदी होती है और जिसके बीच से कलकल-खलखल करता झरना बहता है। हम अपनी पसंद की तसवीर बनाते हैं और उसे सहेजकर रखते हैं।

जन संस्कृति

मैंने वर्तमान समय में भारतीय जनता के गतिशील जीवन-नाटक को देखा। ऐसे अवसर पर मैं अक्सर उन सूत्रों को खोज लेता था जिनसे उनका जीवन अतीत में बँधा है, जबकि उनकी आँखें भविष्य पर टिकी रहती थीं। हर जगह मुझे एक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मिली जिसका जनता के जीवन पर बहुत गहरा असर था। इस पृष्ठभूमि में लोक प्रचलित दर्शन, परंपरा, इतिहास, मिथक और पुराकथाओं का मेल था और इनमें से किसी को दूसरे से अलग करके देख पाना संभव नहीं था। पूरी तरह अशिक्षित और निरक्षर लोग भी इस पृष्ठभूमि में हिस्सेदार थे। लोक-प्रचलित अनुवादों और टीकाओं के माध्यम से भारत के प्राचीन महाकाव्य—*रामायण* और *महाभारत* और अन्य ग्रंथ भी जनता के बीच दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। हर घटना, कथा और उनका नैतिक अर्थ, लोकमानस पर अंकित था और उसने उन्हें समृद्ध और संतुष्ट बनाया था। अनपढ़ ग्रामीणों को सैकड़ों पद याद थे और अपनी बातचीत के दौरान वे बराबर या तो उन्हें उद्धृत करते थे या फिर किसी प्राचीन रचना में सुरक्षित किसी ऐसी कहानी का उल्लेख करते थे जिससे कोई नैतिक उपदेश निकलता हो। रोज़मर्रा की ज़िंदगी के मसलों के बारे में सीधी-सादी बातचीत को ये देहाती लोग जब इस तरह का साहित्यिक मोड़ देते थे तो मुझे अक्सर बहुत आश्चर्य होता था। यदि मेरे मन में लिखित इतिहास और लगभग

सुनिश्चित तथ्यों से निर्मित तसवीरों का भंडार था तो मैंने महसूस किया कि अनपढ़ किसान के मन में भी उसका अपना तसवीरों का भंडार है। यह बात अलग है कि उसका स्रोत पुराकथाएँ एवं परंपरा और महाकाव्य के नायक-नायिकाएँ ही अधिक थीं और इतिहास बहुत कम। तिस पर भी वह बहुत स्पष्ट होता था। मैं उनके चेहरे, उनके आकार और उनकी चाल-ढाल को ध्यान से देखता। उनके बीच बहुत से संवेदनशील चेहरे, बलिष्ठ देह और सीधे साफ़ अवयवों वाले पुरुष दिखाई देते। महिलाओं में लावण्य, नम्रता, गरिमा और संतुलन के साथ-साथ एक ऐसा चेहरा जो अवसाद से भरा होता था। कभी-कभी किसी देहाती रास्ते या गाँव के बीच से गुज़रते हुए मेरी नज़र किसी मनोहर पुरुष या सुंदर स्त्री पर पड़ती थी तो मैं विस्मय-विमुग्ध हो जाता था। वे मुझे पुराने भित्ति चित्रों की याद दिला देते थे। मुझे इस बात से हैरत होती कि उन तमाम भयानक कष्टों के बावजूद, जिनसे भारत युगों तक गुज़रता रहा, आखिर यह सौंदर्य कैसे टिका और बना रहा! इन लोगों को साथ लेकर हम क्या नहीं कर सकते बशर्ते इनके हालात बेहतर हों और इनके पास कुछ करने के ज़्यादा अवसर हों।

चारों ओर गरीबी और उससे पैदा होने वाली अनगिनत विपत्तियाँ फैली थीं और इसकी छाप हर माथे पर थी। ज़िंदगी को कुचलकर विकृत और भयंकर रूप दे दिया गया था। इस विकृति से तरह-तरह के भ्रष्टाचार पैदा हुए और लगातार अभाव और असुरक्षा की स्थिति बनी रहने लगी। यह सब देखने में सुखद नहीं था, पर भारत की असलियत यही थी। स्थितियों को समर्पित भाव से स्वीकार करने की प्रवृत्ति प्रबल थी। पर साथ ही एक प्रकार की नम्रता और भलमनसाहत थी जो हज़ारों वर्ष की सांस्कृतिक विरासत की देन थी, जिसे बड़े से बड़ा दुर्भाग्य भी नहीं मिटा पाया था।